Dr. Nutisri Dubey
Assistant Professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara

MJC – 05 : Western Philosophy

डेकार्ट की पद्धति
(Method of Descartes)

डेकार्ट के पूर्व दर्शन विवादों का अखाड़ा बना हुआ था। दर्शन का कोई क्षेत्र ऐसा न था जिस पर विचारकों में सहमति बनी हो। दर्शन की यह दुर्दशा एक निश्चित पद्धति के अभाव में थी। उन्होंने एक ऐसी विधि की खोज करनी चाही जिसके आधार पर दर्शन की एक सुदृढ़ इमारत खड़ी की जा सके। इस विधि के द्वारा एक ऐसे बिंदु पर पहुँचना था जो दर्शन का आरंभ बिंदु बन सके और इससे अन्य सभी निष्कर्ष निर्विवाद रूप से निगमित किए जा सकें। इसके लिए उन्होंने संदेह से अपना चिंतन आरंभ किया।

डेकार्ट के दार्शनिक पद्धति को 'संशयात्मक पद्धति' के नाम से जाना जाता है। उनके अनुसार हमें अपनी इन्द्रियों और उनसे प्राप्त संवेदनो कभी पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ कभी-कभी धोखा देती हैं। प्रायः यह दावा किया जाता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वाधिक प्रमाणिक होता है। किंतु हम देखते हैं कि कभी-कभी इन्द्रियजन्य ज्ञान भ्रामक होता है।

डेकार्ट प्रश्न करता है कि "'क्या इन्द्रियानुभव से सदैव यथार्थ वस्तुओं का ज्ञान होता है? क्या मनुष्य को विश्वास है कि उसका शरीर एवं शारीरिक क्रियाएँ वास्तविक हैं? डेकार्ट के अनुसार हम इन प्रश्नों के उत्तर में कोई निश्चित मत नहीं दे सकते हैं। दर्शन को एक सुदृढ़ आधार पर स्थापित करने के लिए डेकार्ट ने अपने संदेह को अत्यन्त व्यापक बनाया। उनका प्रसिद्ध कथन है कि "स्वप्नों में जो कुछ हमारे मन में घटित होता है वह वास्तविक प्रतीत होता है, किन्तु यथार्थ जीवन के धरातल पर वह भ्रामक सिद्ध होता है।" वर्तमान समय में हम जो कुछ देखते हैं उस पर संशय किया जा सकता है। यहाँ तक कि यह भी नहीं कहा जा सकता है कि हम जाग्रत अवस्था में हैं या स्वप्न देख रहे हैं (अनुभव एव मृषा)। गणित क्रियाओं में प्राय: लोगों को भूल करते हुए देखा जा सकता है। अत: उसके बारे में भी संदेह किया जा सकता है। अपने संदेह विस्तृत करते हुए डेकार्ट ने कहा है कि ऐसा कोई प्रत्यय नहीं है जो मुझे निश्चित और स्पष्ट प्रतीत होता है। अत: मैं समझता हूँ कि वे सब वस्तुए जिन्हें मैं देखता हूँ दोषपूर्ण हैं। इसी प्रकार डेकार्ट ने स्मृतिजन्य ज्ञान से लेकर आनुभविक ज्ञान विस्तार, गति आदि के ज्ञान को मानसिक कल्पना के समान मानकर उन सब पर संशय व्यक्त किया। इससे स्पष्ट है कि उनके अनुसार जगत के कुछ भी निश्चित और अभ्रान्त नहीं है। सन्देह की इस पद्धति को ही 'कार्टेशियन मेथड' (Cartersian Method) के नाम से जाना जाता है।

वस्तुत: डेकार्ट ने अपने चिन्तन को पूर्वाग्रहों से मुक्त करने के लिए प्राय: प्रत्येक वस्तु पर संशय किया। यही कारण है कि उनकी संदेह-पद्धति संशयवाद की ओर नहीं ले जाती है। उसका प्रयोग वैध ज्ञान (प्रमा) को प्राप्त करने के लिए एक साधन के रूप में किया गया। अत: वह संशयवादी नहीं है।

डेकार्ट की दार्शनिक पद्धति के चार प्रमुख नियम हैं, जिनका उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दार्शनिक पद्धति पर विमर्श' (Discourse on Method) में किया है। ये नियम अधोलिखित हैं :

(1) प्रथम नियम के अनुसार, किसी चीज को तब तक सत्य नहीं मानना चाहिए जब तक कि उसका प्रमाणिक ज्ञान न हो जाए। किसी किसी चीज का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें पूर्वाग्रहों एवं उतावलेपन (जल्दबाजी) से मुक्त होना चाहिए। इसके लिए विचारणीय समस्या के स्वरूप पर तार्किक चिन्तन और बौद्धिक सावधानी अपेक्षित है। केवल स्पष्ट और विवेकपूर्ण ज्ञान को ही प्रामाणिक (वैध) मानना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि डेकार्ट के अनुसार स्पष्टता विवेकपूर्णता ही किसी ज्ञान के प्रमात्व (वैधता) की कसौटियाँ हो सकती हैं।

(2) द्वितीय नियम के अनुसार, हमें जिस जटिल समस्या पर विचार करना है, उसका विश्लेषण करना चाहिए। विचारणीय समस्या का विश्लेषण तब तक करना चाहिए जब तक कि उसके अविश्लेष्य अर्थात् सरल अंश प्राप्त न हो जायें। जब विचारणीय समस्या का सरल अंश (घटक) स्पष्ट और विवेकपूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो जाता है तो वह समस्या अविश्लेष्य हो जाती है। दूसरे शब्दों में, समस्या के विश्लेषण का लक्ष्य उसके मूल तत्वों की जानकारी प्राप्त करना होता है।

(3) तृतीय नियम के अनुसार, विचारणीय समस्या के स्वरूप पर व्यवस्थित ढंग से विचार किया जाता है। हम सरलता से कठिनता के बढ़ते हुए क्रम में विश्लेष्य समस्या को प्रस्तुत करते हैं। सबसे पहले समस्या के मूल तत्व को रखते हैं। उसके बाद धीरे-धीरे अपेक्षाकृत कुछ अधिक क्लिष्ट तत्वों पर विचार किया जाता है। इससे हमारे विचारों में क्रमबद्धता आती है, भले ही विचारणीय समस्या में क्रमबद्धता का अभाव

हो। वस्तुत: तीसरा नियम एक प्रकार का 'संश्लेषण' है। इसका उद्देश्य अव्यवस्थित समस्या के स्वरूप को व्यवस्थित करना है। यह नियम ज्यामितीय विधि पर आधारित है। इसके अन्तर्गत समस्या के मूल तत्वों को व्यवस्थित रूप से रखकर उसके आधार पर निगमित होने वाले निष्कर्षों को संगठित किया जाता है।

(4) चतुर्थ नियम पूर्वोक्त नियमों का सर्वेक्षण, परीक्षण एवं मूल्यांकन है। इसके अन्तर्गत अपने द्वारा किये गये आकलन (गणना) का आलोचनात्मक सर्वेक्षण किया जाता है, ताकि विश्लेषण और संश्लेषण की प्रक्रिया अर्थात् हमारी विचार श्रृंखला में कोई गड़बड़ी न हो, अथवा विचारणीय समस्या का कोई भी घटक छूट न जाय। इससे स्पष्ट है कि चतुर्थ नियम का लक्ष्य विचार-प्रक्रिया को निर्दोष बनाना है।

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि डेकार्ट की दार्शनिक पद्धति विश्लेषण प्रधान है क्योंकि बिना विश्लेषण के किसी समस्या के मूल घटकों का स्पष्ट और विवेकपूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता है। अत: इस विधि में विश्लेषण का सर्वाधिक महत्व है। वस्तुत: समकालीन दर्शन की विश्लेषी प्रवृत्ति के बीज डेकार्ट की इस प्रणाली में ही निहित हैं। डेकार्ट ने विश्लेषणात्मक नियम का प्रयोग वैज्ञानिक अनुसंधान की विधि के रूप में किया है। वस्तुत: पहले और दूसरे दोनों नियम वैज्ञानिक अनुसंधान की विधि से सम्बन्धित हैं। तीसरे नियम का प्रयोग समस्या की व्यवस्थित व्याख्या के लिए किया गया है। इससे समस्या के स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है। चौथा नियम समस्या के मूल्यांकन से सम्बन्धित है, ताकि पूर्वोक्त तीनों नियमों का सम्यक् परीक्षण किया जा सके। इसका लक्ष्य वैचारिक-प्रक्रिया के संभाव्य दोषों का निराकरण करना है।

कुछ समकालिक दार्शनिकों ने डेकार्ट के सन्देह करने की प्रक्रिया पर आपत्ति की है। यदि यह मान भी लिया जाय कि हमारा समस्त ज्ञान त्रुटिपूर्ण या भ्रामक है तो ऐसा तभी

संभव है जब प्रमाणिक ज्ञान (प्रमा) को अप्रमाणिक ज्ञान (अप्रमा) से पृथक करना संभव हो। राइल के अनुसार हमारे पास सत्य को भ्रम से पृथक करने के लिए कसौटी होनी चाहिए। हमारे इस ज्ञान से कि — "हमारे प्रत्यक्ष भ्रान्त होते हैं, यह तर्कत: सिद्ध होता है कि हमें सदैव धोखा नहीं दिया जा सकता है।" इसी प्रकार इंग्लैण्ड के तार्किक अनुभववादी दार्शनिक ए॰ जे॰ एयर के अनुसार, " किसी भ्रामक प्रत्यक्ष को अभ्रान्त प्रत्यक्षों के सापेक्ष रूप में ही भ्रान्त (भ्रामक) कहा जा सकता है। यदि सभी प्रत्यक्षों को भ्रामक कहा जाय, तो भ्रामक शब्द अर्थहीन हो जायगा।" एयर के द्वारा दिया गया तर्क 'भाषिक प्रागनुभविक (Linguistic Apriori) कहलाता है। वस्तुत: डेकार्ट ने सन्देह का प्रयोग निश्चित ज्ञान की प्राप्ति के साधन के रूप में ही किया है। "मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ" अर्थात् आत्मा के स्वत: सिद्ध हो जाने के बाद उसका 'सन्देह' समाप्त हो जाता है। डेकार्ट के 'सन्देह' का लक्ष्य समस्त पूर्वाग्रहों से रहित होकर सत्य की खोज करना है। इसके फलस्वरूप हम निश्चयात्मक सत्य को प्राप्त करने की ~~सत्य~~ कसौटी की ओर बढ़ते हैं। इस पद्धति का प्रभाव स्पिनोजा और लाइबनिज के दर्शन पर स्पष्ट रूप से उपलक्षित होता है। यहाँ तक कि जर्मन दार्शनिक हुसर्ल की 'संवृत्ति शास्त्रीय विधि' डेकार्ट की सन्देह पद्धति का ही एक विस्तृत रूप है। अत: इस पद्धति का पाश्चात्य दर्शन में एक ऐतिहासिक महत्व है।